

चिदानन्द की प्राप्ति के चतुर्विध उपाय

सारांश

संसारविष से सन्तप्त प्राणी सतत दुःख से मुक्ति की कामना करता है। और यह चिदानन्द की प्राप्ति होने पर ही सम्भव है। चूँकि विवेकी के लिए समस्त संसार दुःखात्मक है, अतः उस चिदानन्द की प्राप्ति के लिए सतत प्रयास करता रहता है। चिदानन्द की प्राप्ति के विषय में भारतीय विद्वज्जन वैमत्य रखते हैं। वे प्रायशः स्व-स्व सम्प्रदायानुसार साधन का उपदेश करते हुए देखे जाते हैं। इसी क्रम में शैवदार्शनिक उसकी प्राप्ति में चतुर्विध उपायों को स्वीकार किया है, जैसे – अनुपाय, शाम्भवोपाय, शाक्तोपाय और आणवोपाय। ये उपाय समावेश ही हैं, जो परमशिव के साथ अणु की अभिन्नाङ्गता को अभिव्यक्त करता है। प्रस्तुत शोधलेख का यह ही प्रस्तूयमान विषय है। प्रस्तुत शोधलेख में इन उपायों के स्वरूप तथा इनकी उपयोगिता पर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

मुख्य शब्द : चिदानन्द, प्राणशक्ति, ब्रह्मरन्ध्र, चक्र, नाडी, प्रमाता, संवित्, प्रमाता, अनुपाय, शाम्भवोपाय, शाक्तोपाय, आणवोपाय।

प्रस्तावना

साधक के चिदानन्द की प्राप्ति हो जाने के उपरान्त उसके देहादि के अनुभव रहने पर भी चित् के साथ ऐकात्म्य की प्रतिपत्ति दृढीभूत हो जाता है। इस समय वह साधक जीवन्मुक्त हो जाता है। अतः स्वतः प्रश्न उपस्थित होता है कि इस चिदानन्द की प्राप्ति कैसे होती है। इसके समाधान में कहा जाता है कि मध्य का विकास से ही चिदानन्द की प्राप्ति हो जाती है। यहाँ पर भगवती संवित् को ही मध्य कहा गया है। क्योंकि यह भगवती संवित् ही सबके अन्तरतम रूप से विद्यमान है और जब तक इसकी भित्ति का आश्रय न लिया जाए, तब तक किसी स्वरूप की उत्पत्ति सम्भव नहीं हो सकती। यह भगवती संवित् मायादशा में अपने वास्तविक स्वरूप को छिपाते हुए पहले संवित् प्राण के रूप में परिणत हो गयी है – इस नीति के अनुसार प्राणशक्तिरूप भूमि को स्वीकार करके अवरोह क्रम से बुद्धि, देह आदि भूमि को आश्रय करती हुयी सहस्र नाड़ियों के मार्ग का अनुसरण करती है।

पण्डित जयदेव सिंह जी के अनुसार यहाँ पर प्राणशक्ति सर्वव्यापी आद्या प्राणशक्ति से है, न कि प्राणी के मध्य रहने वाली प्राणवायु। चिति का आत्मस्वरूप को गोपन करने के लिए और धीरे-धीरे पञ्चमहाभूत में परिणत हो जाने में यह पहला क्रम है। इस प्राणशक्ति को महाप्राण भी कहते हैं। प्राणी के मध्य वह संवित् पलाशपर्णमध्यशाखान्याय से ब्रह्मरन्ध्र से लेकर अधोवक्त्र तक प्राणशक्ति रूप ब्रह्म के आश्रयभूत मध्यनाडी के रूप से प्रधानरूप में स्थित है। क्योंकि वहीं से ही समस्तवृत्तियों का उदय और वहीं पर ही विश्राम होता है।

यहाँ पर ब्रह्मरन्ध्र का तात्पर्य सहस्रार से हैं। इस प्राणमय कोश में प्राण के भिन्न-भिन्न केन्द्र के रूप से कई चक्र अवस्थित हैं। इन चक्रों की सङ्ख्या के विषय में तन्त्रशास्त्र में वैमत्य प्राप्त होता है। योगिनीहृदय में नौ चक्रों का वर्णन है। जैसे कहा गया है—

नवयोन्यात्मकं चक्रं चिदानन्दघनं महत्।

चक्रं नवात्मकमिदं नवधा भिन्नमन्त्रकम्॥¹

श्रीनेत्रतन्त्र में छः चक्रों को कहा गया है। जैसे—

खमनन्तं तु जन्माख्यं नाभौ व्योम द्वितीयकम्।

तृतीयं तु हृदि स्थाने चतुर्थं बिन्दुमध्यतः॥

नादाख्यं तु समुद्दिष्टं षट्चक्रमधुनोच्यते।

जन्माख्ये नाडिचक्रं तु नाभौ मायाख्यमुत्तमम्॥

हृदिस्थं योगिचक्रं तु तालुस्थं भेदनं स्मृतम्।

बिन्दुस्थं दीप्तिचक्रं तु नादस्थं शान्तमुच्यते॥²



सुधांशु कुमार षडङ्गी
उपाचार्य,
विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु
संस्कृत एवं भारत-भारती
अनुशीलन संस्थान विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय,
साधु आश्रम, होशियारपुर

अर्थात् जन्मस्थान में नाडीचक्र, नाभि में मायाचक्र, हृदय में योगीचक्र, तालु में भेदन, बिन्दु में दीप्ति एवं नाद में शान्तचक्र स्थित है। इनमें से नाद ही ब्रह्मरन्ध्र है। वस्तुतः मध्यनाडी जो सुषुम्ना नाडी है, वह वज्रा और चित्रिणी नामक दो नाडी से मिली हुई है। इनमें चित्रिणी चन्द्ररूपा तथा सत्त्वगुणवाली है, वज्रा सूर्यरूपा तथा रजोगुणवाली है और सुषुम्ना अग्निरूपा तमोगुणात्मिका है। यह त्रिगुणात्मिका नाडी कन्द के मध्यभाग से सहस्रार तक विस्तृत है। और अधोवक्त्र का तात्पर्य नीचे की ओर मुख किया हुआ चक्रविशेष होना चाहिए, जो मूलाधार के रूप से कही जाती है। ये समस्त चक्र मूलाधार से लेकर सहस्रार के मध्य स्थित है। जिसमें भगवती संवित् प्राणशक्ति के रूप से स्थित है। इन चक्रों के जागरण से पशुप्रमाता पतिप्रमाता पद को प्राप्त कर जाता है। भगवती संवित् की यह स्थिति पलाशपर्णन्याय से मूलाधार से सहस्रार तक है। पलाशपत्र की मध्यशाखा से तात्पर्य यह है कि जिसप्रकार पलाशपत्र के मध्यतन्तु से उस तन्तु से चारों ओर फैली हुयी अन्य तन्तु जुडी हुयी रहती हैं, उसी प्रकार शरीर में जितनी भी नाडियाँ हैं, वे सब सुषुम्ना के साथ जुडी हुयी है। यह ही सुषुम्ना जो कि ब्रह्मनाडी कहलाती है उसमें यह संवित् प्राणशक्ति के रूप में प्रधानरूप से स्थित है। यहीं से ही समस्त वृत्तियों का उदय और लय होता है। इस प्रकार होते हुए भी वह पशुप्रमाताओं के लिए अपने वास्तविक स्वरूप को छिपाए हुए स्थित है। इसके हेतु साधक को शक्तिपात अर्थात् अनुग्रह की आवश्यकता रहती है। शक्तिपात के बिना साधक उस चिदानन्द की प्राप्ति नहीं कर सकता है। इसलिए साधक शक्तिपात की वाञ्छा रखता है। परन्तु यह शक्तिपात अनायास नहीं होता है। अपितु इसके लिए साधक को उसके योग्य बनना पडता है। इस योग्यता की प्राप्ति हेतु तन्त्रशास्त्र में चारप्रकार के उपाय कहे गए हैं। जैसे – १.अनुपाय, २.शाम्भवोपाय, ३.शाक्तोपाय और ४. आणवोपाय। ये उपाय साधकस्थित त्रिविध मलों को नष्ट कर देती हैं, जिससे साधक अनुग्रह प्राप्ति हेतु योग्य बनता है।

अनुपाय

इन चारों उपायों से अनुपाय को आनन्दोपाय भी कहा जाता है। गुरु के शक्तिपात से शिष्य में शक्ति का संचार होने से एक साथ स्वप्रकाश का उन्मीलन हो जाता है। इसके लिए भावनात्मक अनुसन्धान की आवश्यकता न होने से उपायरहित यह अनुपाय कहलाता है। इसमें सकृद्देशना होने से यह अल्पोपाय है। आचार्य जयरथ ने विवेक में इसी को और अधिक स्पष्ट करते हुए एक कारिका को उद्धृत किया है, जैसे –

उपायैर्न शिवो भाति भान्ति ते तत्प्रसादतः।
स एवाहं स्वप्रकाशो भासै विश्वस्वरूपकः॥³
इत्याकर्ण्य गुरोर्वाक्यं सकृत्केचन निश्चिताः।

विना भूयोऽनुसन्धानं भान्ति संविन्मया स्थिताः॥

अभिनवगुप्तपाद ने तन्त्रालोक में इसकी महत्ता को बताते हुए कहा है कि –

अनुपायं हि यद्वृत्तं कोऽर्थो देशनयात्र वै।
सकृत्स्याद्देशना पश्चादनुपायत्वमुच्यते॥⁴

जयरथ ने इसको स्पष्ट करते हुए इसे अनुदरा कन्या के साथ तुलना की है। जैसे –

सकृदिति – न पुनरुपायानुभवः पौनः पुन्येनेत्यर्थः।
अत एवाह 'पश्चादनुपायत्वमुच्यते' इति, आणवादौ असकृद्भाव्यमानो हि देशनादि उपेयप्राप्तिं विदधाति इति तत्र तथात्वमुक्तम्, इह तु न तथा इत्यनुपायत्वं, पर्युदासस्य 'अनुदरा कन्या' इति वदल्यार्थत्वेऽपि भावात् अल्पोपायत्वमित्यर्थः।⁵

शाम्भवोपाय

स्वात्मपरामर्श तथा स्वस्वरूपोपलब्धि हेतु यह शाम्भवोपाय श्रेयस्कर है। इसमें अभेदभावना का परामर्श होने से समस्त विकल्प अनुपयोगी हो जाते हैं। यह अभेदप्रधानात्मक होने से शिव और जीव में भेद नहीं रहता। इस अवस्था में नामरूपात्मक जगत् का परित्याग होकर केवल शिवस्वरूप आत्मोपलब्धि होती है। इसे अविकल्प अथवा निर्विकल्प योग भी कहा जाता है। श्रीतन्त्रालोक के अनुसार अकिञ्चित् चिन्तक के अन्दर गुरु के द्वारा किये गए प्रतिबोध से उत्पन्न होने वाला आवेश ही शाम्भवोपाय है। जैसे कि –

अकिञ्चित्चिन्तकस्यैव गुरुणा प्रतिबोधितः।

उत्पद्यते यः आवेशः शाम्भवोऽसावुदीरितः॥⁶

पण्डित परमहंस मिश्र जी ने यहाँ पर कारिकोक्त प्रथमपंक्ति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि निर्विचार अवस्था में तीव्र बोध का प्रत्यभिज्ञान होने से जो आवेश उत्पन्न होता है, वह शाम्भव समावेश कहा है। यहाँ पर अकिञ्चित्चिन्तकस्य इस पद के द्वारा विकल्पों की अनुपयोगिता की ओर संकेत किया गया है। जिससे अतिशीघ्र ही ज्ञेय की समाप्ति हो जाती है। इसकी श्रेष्ठता को दिखाते हुए अभिनवगुप्त ने स्वयं ही कहा है –

एवं परेच्छा शक्त्यंशसदुपायमिमं विदुः।

शाम्भवाख्यं समावेशं सुमत्यन्तेनिवासिनः॥

मालिनीविजयोत्तरतन्त्र भी तन्त्रालोकोक्त लक्षण को स्वीकार किया है। जैसे –

अकिञ्चित्चिन्तकस्यैव गुरुणा प्रतिबोधितः।

उत्पद्यते यः आवेशः शाम्भवोऽसावुदाहृतः॥⁷

यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि ज्ञेय जड और चेतन के भेद से दो प्रकार का है। संविद् में जड नीलादि से भी समावेश होने से समावेश केवल बोधात्मक नहीं हो सकता है। इसके समाधान में तन्त्रालोककार कहते हैं कि चिन्मात्र ज्ञेय कल्पित है और जड नीलादि पदार्थ रूप से सत्य है। यह पार्थक्यपूर्ण विभाजन ही है। जड नीलादि के साथ जो समावेश होता है वह प्रतिच्छन्दात्मक होता है तथा चैतन्य के साथ जो समावेश होता है वह तादात्म्यरूप होता है। क्योंकि चेतन का ज्ञेयत्व कल्पित होने से वस्तुशून्य है। परन्तु जड नीलादि ज्ञेय स्थल में चित् का नीलादि के रूप में दर्पणमुखन्याय से प्रतिबिम्बनमात्र ही समावेश है, न कि चित् और नील का तादात्म्य। इनके तादात्म्य स्वीकार करने पर नीलादि की भी ज्ञानस्वरूपता हो जाएगी, जिससे केवल ज्ञान ही शेष रहेगा, न कि नीलादि। जिससे प्रतिच्छन्दकता ही समाप्त हो जाएगी। इस समय संकुचित और असंकुचित चित्त का समानान्तर रूप न रहने से चिदेकात्म्य की प्राप्ति हो जाएगी। अतः बोध के साथ

एकात्म्य ही समावेश है। इस प्रकार जब संकुचित संवित्ति अविकल्प अवस्था में भावनादि से निरपेक्ष रहती हुई शिव से तादात्म्य प्राप्त कर लेती है, तब उस अवस्था में प्राप्त होने वाला समावेश ही शाम्भव कहलाता है। जैसे –

तेनाविकल्पा संवित्तिर्भावनाद्यनपेक्षिणी।
शिवतादात्म्यमापन्ना समावेशोऽत्र शाम्भवः ॥

शाक्तोपाय

साधक उच्चाररहित वस्तुतत्त्व का चित्त में चिन्तन करते हुए जो समावेश प्राप्त करता है, उसे शाक्त समावेश अथवा शाक्तोपाय कहा जाता है। जैसे श्रीतन्त्रालोक में कहा गया है –

उच्चाररहितं वस्तु चेतसैव विचिन्तयन्।
यं समावेशमाप्नोति शाक्तः सोऽत्राभिधीयते ॥⁸

इसमें क्रियोपाय के बाह्य उच्चार, करण, ध्यान, वर्ण तथा स्थान आदि की कल्पना न होने के कारण अभेदावस्थात्मक है। परन्तु इसमें विकल्पात्मकता विद्यमान होने से चित्त से इनका चिन्तन भी होता रहता है। अतः यह भेद और अभेद उभयस्वरूपवाला है। कहा भी गया है –

भेदाभेदौ हि शक्तिता ॥⁹

इस उपाय को ज्ञानोपाय भी कहा जाता है। क्योंकि साधक जब 'आत्मैवेदं सर्वं' इत्याकारक चिन्तन करता है, तो इसमें आत्मा और अनात्मरूप दो कल्पांश वर्तमान रहते हैं तथा आत्मा ही अनात्मरूप से प्रकाशित हो रहा है – यह प्रतीति भी रहती है। इसके पौनःपुनः अभ्यास से अभेदपरामर्श होने लगता है। जिससे पूर्व में विद्यमान सविकल्पता निर्विकल्पता में परिणत हो जाता है। यह ही ज्ञान है। जब साधक विवेक अथवा गुरु के द्वारा प्राप्त अवबोध से उच्चार, करण आदि विकल्पव्यापारों का शोधन कर लेता है तब इन सबमें स्वात्मपरामर्श होने के कारण उसके चित्त में विश्वाहन्ता का विकास हो जाता है। इस प्रकार परामर्श से वह साधक अभेदावस्था को प्राप्त कर जाता है। इसमें उससे भिन्न विश्व का परामर्श नहीं हो पाता है। इस प्रकार के सार्वत्म्य भावना के आश्रय से साधक के चित्त में शुद्ध विकल्पों का स्फुरण होने लगता है। जैसे तन्त्रालोक में कहा गया है –

तत्र बुद्धौ तथा प्राणे देहे चापि प्रमातरि।
अपारमार्थिकेऽप्यस्मिन् परमार्थः प्रकाशते ॥¹⁰

विवेक में भी कहा गया है –

बुद्धौ प्राणे तथा देहे देशे या जडता स्थिता।
तां तिरोधाय मेधावी संविद्रश्मिमयी भवेत् ॥¹¹

आणवोपाय

उच्चार, करण, ध्यान, वर्ण तथा स्थान की प्रकल्पना आदि के द्वारा साधक जिस समावेश को प्राप्त करता है वह आणव समावेश अथवा आणवोपाय कहलाता है। तन्त्रालोक में कहा भी गया है –

उच्चारकरणध्यानवर्णस्थानप्रकल्पनैः।
यो भवेत्स समावेश सम्यगाणव उच्यते ॥¹²

परिमित प्रमाता परिमित स्वरूपवाले बुद्धि तथा प्राणादि को उपाय के रूप में स्वीकार करता है। अतः अणु से गृहीत उपाय होने से यह आणवोपाय है। शिवसूत्र विमर्शिनी में आचार्यश्री स्वयं कहा है कि –

इदानीमाणवोपायं प्रतिपिपादयिषुः,

अणोः तावत्स्वरूपं दर्शयति 'आत्मा चित्तम्' ॥¹³

इनमें से ध्यान बुद्धिरूप करण का व्यापार है। प्राण स्थूल तथा सूक्ष्मरूप से दो है। इन दोनों में स्थूल प्राण का व्यापार उच्चार एवं सूक्ष्म प्राण वर्ण है। सगुण स्वरूप में चित्त की एकाग्रता ध्यान है। तन्त्र में प्राणादि वायु का व्यापार उच्चार कहा जाता है। प्राणोच्चार के समय स्वाभाविकरूप से उच्चरित होने वाले सोऽहम् – यह सकार और हकार वर्ण कहे जाते हैं।

क्रियाशक्ति का प्रथमोन्मेष प्राण-व्यापार है। प्राणशक्ति अपने प्राणादि रूपों से जीव को आप्यायित करता रहता है। इस क्रियाशक्ति के पूर्वभाग में कालाध्वा तथा उत्तरभाग में देशाध्वा की स्थिति है। कालाध्वा में पर, सूक्ष्म एवं स्थूलरूप वर्ण, मन्त्र एवं पद की तथा देशाध्वा में कालतत्त्व तथा भुवन की स्थिति है। समस्त षडध्वात्मक जगत् इस क्रियाशक्ति का ही उन्मेष है। समस्त षडध्वात्मक जगत् में प्राणशक्ति का ही स्पन्दन होता है। हृदय आदि स्थानों में स्पन्दमान इस प्राणशक्ति में चित्त को विलीन कर देना भी स्थान-कल्पना है। इसी प्रकार शरीर के भीतर विद्यमान नाडी, चक्र प्रभृति स्थानों में एवं लिङ्ग, चत्वर, प्रतिमा आदि में चित्त को नियोजित करना भी स्थान प्रकल्पना है। इन विकल्पात्मक स्थूल उपायों को आणव उपाय कहा गया है।

वस्तुतः भेदमयी कल्पनाओं से कल्पित तथा उच्चार, करण तथा ध्यानादि बाह्य विकल्पमय अर्थों के साधकरूप क्रियोपाय ही आणवोपाय है। यहाँ पर भेद ही अपवर्ग का प्रतिबन्धक है। कहा भी गया है –

यत्तु तत्कल्पनाक्लृप्ताबहिर्भूतार्थसाधनम्।
क्रियोपायं तदाम्नातं भेदो नात्रापवर्गः ॥¹⁴

स्वरूप का प्रथम ही अपवर्ग है और जब तक भेदबुद्धि विद्यमान है, तब तक स्वरूपकथन सम्भव नहीं हो सकता है। जब बारम्बार विकल्पांश के निश्चय के क्रम की चर्चा के द्वारा साधक जिस विकल्पात्मक परामर्श को प्राप्त करता है वह ज्ञानोपाय है। यह ज्ञानशक्ति का स्फार है। तन्त्रालोक में कह गया है –

भूयो भूयो विकल्पांशनिश्चयक्रमचर्चनात्।
यत्परामर्शमभ्येति ज्ञानोपायं तु तद्विदुः ॥¹⁵

साधनालीन साधक की चरम तल्लीनता में समस्त विकल्पों का नाश हो जाता है। यह तैजसावस्था है। उससे ही आत्मपरामर्श की प्रथमानुभूति होने लगती है। अन्य समस्त वैकल्पिक परामर्श नष्ट हो जाते हैं। इस समय एक स्फुरत्ता मात्र सूक्ष्मावस्था आती है। उसमें स्पष्टतः साक्षात् स्फुरण ही आद्यानुभूति होती है। यह इच्छा नामक उपाय है। इसे ही शाम्भव उपाय भी कहा जाता है। इस अवस्था में शैव महाभाव का पथ प्रशस्त हो जाता है। अतः कहा भी गया है –

तत्राद्ये स्वपरामर्शे निर्विकल्पैकधामनि।
यत्स्फुरेत्प्रकटं साक्षात्तदिच्छाख्यं प्रकीर्तितम् ॥

यथा विस्फुरितदृशामनुसन्धिं विनाप्यलम्।
भाति भावः स्फुटस्तद्वत्केषामपि शिवात्मना ॥¹⁶

उपायों के द्वारा शिव का भान नहीं होता है, क्योंकि उपाय उपेय-शिव की अनुग्रह से ही प्रकाशित होता है। अतः कहा भी गया है –

उपायैर्न शिवो भाति, भान्ति ते तत्प्रसादतः ॥

‘मैं वही स्वप्रकाश हूँ, मैं ही विश्वरूप में भासित हो रहा हूँ’ – गुरु से इस प्रकार कथन को अवगमन करते हुए कुछ दत्तावधान शिष्य निश्चित रूप से यह – ढ धारणा बना लेते हैं। किसी अनुसन्धान, ऊहापोह या तर्क के बिना ही ये संविन्मय स्थितप्रज्ञ, स्वात्मस्थित एवं स्वयंप्रकाश यही अनुपाय विज्ञान है। जिनकी चेतना स्वच्छ दर्पण के समान हो गयी है, उनके ऊपर अनुग्रह होता है। इससे उपायरहित अनुपाय विज्ञान प्राप्त होता है। यह अनुपाय अनुग्रह मार्ग पर आधृत है। गुरु का शक्तिपात शिष्य में शक्ति का सञ्चार कर देता है, जिससे एक साथ स्वप्रकाश का उन्मीलन हो जाता है। एतदर्थ बारम्बार भावनात्मक अनुसन्धान नहीं करना पड़ता है। शाम्भवोपाय तीव्रशक्तिपातसापेक्ष है, परन्तु निरुपायस्वरूपक यह अनुपाय तीव्रतीव्रशक्तिसापेक्ष है। यह इच्छा, ज्ञान और क्रियासम्बन्धी शाम्भव, शाक्त तथा आणव समावेशत्रय से भी उत्कृष्ट है। जयरथ ने कहा भी है –

विभुशक्त्यणुसम्बन्धात्समावेशस्त्रिधा मतः ।
इच्छाज्ञानक्रियायोगादुत्तरोत्तरसम्भूतः ।¹⁷
ततोऽपि परमं ज्ञानमुपायादिविवर्जितम् ।
आनन्दशक्ति विश्रान्तमनुत्तरमिहोच्यते ।¹⁸
अनुपाय में देशना निरर्थक होती है। इसके अन्तर्गत सिद्धों एवं योगिनियों के दर्शन, चरुभोजन, उपदेश, शास्त्र-स्वाध्याय, साधना एवं गुरु की सेवा अन्तर्भूत है। कहा गया है –

सिद्धानां योगिनीनां च दर्शनं चरुभोजनम् ।
कथनं संक्रमः शास्त्रे साधनं गुरुसेवनम् ।
इत्याद्यो निरुपायस्य संक्षेपोऽयं वरानने ॥
इस अनुपाय से क्रियायोग समुद्भूत है। जैसे –
तत्र तावत्क्रियायोगो नाभ्युपायत्वमर्हति ।
स हि तस्मात्समुद्भूतः प्रत्युत प्रविभाव्यते ॥¹⁹
इस अनुपाय में विश्राम करने वाला योगी समरस हो जाता है। अपने अहमात्मक स्वात्मसत्ता के संज्ञान के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। उसी का सतत स्मरण करता हुआ योगी ‘स्व’ में स्थित होकर सुखी बन जाता है। जैसे –

उपायो नापरः कश्चित्स्वसत्तावगमादृते ।
तामेवानुस्मरन् योगी स्वस्यो यः स सुखी भवेत् ॥
इस प्रकार अनुपाय समावेश विश्रान्त योगी को यह प्रतीत होने लगता है कि यह समस्त समक्ष समुत्सित भाव मण्डल सम्पूर्णतया संवित्तिरूपी भैरवी भाव के प्रकाश में समाहित हो रहा है। उसे अनुभव होता है कि समस्त प्रपञ्च का स्फुरण उसी से ही हो रहा है। यह उसी में ही प्रतिबिम्बित है। उससे कुछ भी भिन्न नहीं है, अपितु आत्ममय ही है।

शाम्भवावस्था में ध्यान की आवश्यकता नहीं होती है, परन्तु शाक्तावस्था ध्यानसापेक्ष है। शाम्भवोपाय में साधक ज्ञान के द्वारा निर्विकल्प में विश्राम प्राप्त करता है। परन्तु शाक्तोपाय में चित्त, बुद्धि आदि विकल्पांश स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। शाक्तावस्था में कर्तृत्वाभिमान के साथ-साथ जगत् की मायात्मक एवं विकल्पात्मक दृष्टि भी रहती है। मायामय विकल्पांश के कारण भेदविमर्शन होता है। जब शनैः शनैः साधक समावेश की ओर अग्रसर हो जाता है, तब भेदों से अभेद ओर बढ़ने से भेद और अभेद

की स्थिति बनी रहती है। परन्तु शाम्भवोपाय अभेदावस्थारूप है। इसमें साधक ज्ञान के द्वारा निर्विकल्पावस्था में विश्रान्ति ग्रहण करता है। परन्तु ज्ञानोपाय एवं क्रियोपाय विकल्पात्मक है।

निष्कर्ष

वस्तुतः निष्कर्ष रूप से हम यह कह सकते हैं कि उपायों के अभ्यास से उद्भावनीय शिवता का जो आवेश है वह समावेश है। अतः शाम्भवोपायलभ्य शाम्भवसमावेश, शाक्तोपायलभ्य शाक्त समावेश एवं आणवोपायलभ्य आणवसमावेश है। उच्चार, करण तथा ध्यानादि आणवोपाय है। शुद्धचिदात्मक बोध का अहन्ता के रूप से विमर्शन होना और अपनी आत्मा में अनवच्छिन्न शुद्धकर्तृत्वरूप सामर्थ्य का विमर्शन होना तथा उससे देहादि प्रमातृभाव का तिरोभूत होना समावेश कहलाता है। अपने वास्तविक स्वरूप में सम्यक् आवेश ही समावेश है। समावेशप्राप्त साधक ज्ञान कहलाता है। कहा गया है –

अज्ञानरूपमलप्रतिद्वन्द्वितय समावेशलक्षणं
सत्यस्वरूपे सम्यगासमन्तात् प्रवेशलक्षणं ज्ञानं, यल्लाभेन
ज्ञानी यदभ्यासे न च देहप्राणादावनन्तसंविद्
धर्मात्मकविभवसमासादनात् योगी भवति ।²⁰

स्वात्मशिवभावदर्शनपूर्वक स्वकीय मायीय प्रमातृभाव के निमज्जन से शिवस्वरूप में अवस्थान समावेश कहलाता है। जैसे –

मायाप्रमात्राभिमानातिरेकन्यग्भावितसंविदात्मकस्वस्वरूपताया उन्मग्नतात्मकः समावेशः ।²¹ और यह ही चिदानन्दप्राप्ति का प्रमुख साधन है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. योगिनी०, १९३
2. श्रीनेत्रतन्त्र
3. तन्त्रा०वि०, २.२
4. तन्त्रा०, २.२
5. तन्त्रा०वि०, २.२
6. तन्त्रा०, १.१६८
7. मालिनी०, २.२३
8. तन्त्रा०, १.१६६
9. तन्त्रा०, १.१२०-b
10. तन्त्रा०, ५.७
11. उद्भूत, तन्त्रा०वि०, ५.१०
12. तन्त्रा०, १.१७०
13. शि०सू०वि०, ३.१
14. तन्त्रा०, १.१४६
15. तन्त्रा०, १.१४८
16. तन्त्रा०, १.१४६, १४७
17. तन्त्रा०वि०, १.२४१
18. तन्त्रा०, १.२४२
19. तन्त्रा०, २.८
20. ई०प्र०वि०वि०, ३.३२७
21. ई०प्र०वि०वि०, १.७